Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 GISRRJ | Volume 2 | Issue 3 | ISSN : 2582-0095

रस–सूत्र और उसके व्याख्याकार

डॉ. भावना शुक्ला
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

शोध आलेख सार– वाचिक, आंगिक एवं साप्तिक अभिनयों के द्वारा जो हमारी चित्तवृत्तियों का विशेष रूप से विभावन, अर्थात् ज्ञापन कराने वाले हेतु या निमित्त होते हैं, उन्हें ही विभाव की संज्ञा प्रदान की गयी है[3] यहाँ चितवृत्तियों से स्थायी एवं व्यभिचारी नामक भाव ही अभिप्रेत हैं जिन्हें विभाव विभावित अथवा ज्ञापित कराते हैं। आलम्बन एवं उद्दीपन भेद से विभाव दो प्रकार होते हैं। उक्त चित्तवृत्तियों के विषयभूत विभाव आलम्बन कहे जाते हैं तथा भावों को उद्दीप्त करने वाले उन्हें समुत्तेजन प्रदान करने वाले विभाव उद्दीपन होते हैं।[4] भावों के आलम्बन एवं उद्दीपन की कोई संख्या नियत नहीं है; नायकादि तथा देश–काल आदि भेद से वे कई प्रकार के हो जाते हैं।

मुख्य शब्द– वाचिक, आंगिक, साप्तिक, आलम्बन, उद्दीपन, विभावित, काव्यशास्त्र।

संस्कृत काव्यशास्त्र में रस सामग्री अथवा उपकरणों के आधार पर रसकाव्य की बाधा की गयी है। रस–सिद्धान्त के प्रथम आचार्य भरत मुनि ने सूत्र रूप में विभाग, अनुभाव एवं संचारिभाव के संयोग के रस निष्पत्ति को स्वीकृत किया है–

विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।[1]

भारत की दृष्टि में ये ही तीनों भाव सहृदय प्रेक्षकों के मन में वासना रूप से विद्यमान रति, हास, शीक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा एवं विस्मय नामक आठ स्थायी भावों को उदबुद करके उन्हें ही क्रमशः आठ नाट्यरस होते हैं–श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभास, एवं अद्भुत है।[2]

वाचिक, आंगिक एवं साप्तिक अभिनयों के द्वारा जो हमारी चित्तवृत्तियों का विशेष रूप से विभावन, अर्थात् ज्ञापन कराने वाले हेतु या निमित्त होते हैं, उन्हें ही विभाव की संज्ञा प्रदान की गयी है[3] यहाँ चितवृत्तियों से स्थायी एवं व्यभिचारी नामक भाव ही अभिप्रेत हैं जिन्हें विभाव विभावित अथवा ज्ञापित कराते हैं। आलम्बन एवं उद्दीपन भेद से विभाव दो प्रकार होते हैं। उक्त चित्तवृत्तियों के विषयभूत विभाव आलम्बन कहे जाते हैं तथा भावों को उद्दीप्त करने वाले उन्हें समुत्तेजन प्रदान करने वाले विभाव उद्दीपन होते हैं।[4] भावों के आलम्बन एवं उद्दीपन की कोई संख्या नियत नहीं है; नायकादि तथा देश–काल आदि भेद से वे कई प्रकार के हो जाते हैं। दुष्यन्त आदि अप्श्रय किंवा आलम्बन में रति आदि स्थायी भावों को सूचित करने वाले निकार अनुभाव कहलाते हैं।[5] ने अनुभाव भ्रूविक्षेप, कटाझ आदि आलम्बन के शारीरिक निकारों के रूप में प्रकट होते हैं। वाक् अंग तथा सत्व के माध्यम से रसानुकूल संचरण करने वाले विविध भावों को बभिचारी या संचारी की संज्ञा दी गई है।[6] यथा–निर्वेद, ग्लानि, शंका आदि।

संस्कृत काव्यशास्त्र में इस रस–सूत्र (रस–सामग्री) का बड़ा ही सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। आचार्य भरत के मतानुसार जब रस भाव के सहायक उक्त तीनों भावों का संयोग हो जाता है, तो सहृदय सामाजिकों के हृदय में विशिष्ट रस की निष्पत्ति होती है। भरत में 'संयोग' एवं निष्पत्ति शब्दों की कोई स्पष्ट व्याख्या नहीं भी है। फलतः परवर्ती आचार्यो ने इन्हीं दो पदों के आधार पर रस सम्बन्धी मतों का बड़ा ही विशद् एवं सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया है। इन आचार्यों में भट्टलोल्लट, शंकुक, भट्टनायक एवं अभिनवगुप्त काफो महत्वपूर्ण हैं।

रस सूत्र के व्याख्याकारों में सर्वप्रथम भट्टलोल्लट का नाम आता है। इनका रस सिद्धान्त 'उत्पत्तिवाद' के नाम से विख्यात है। ये विभाव आदि को उत्पादक एवं रस को उत्पाद्य मानते हैं। जिस प्रकार घट रूप कार्य के लिए मृददण्डचक्र आदि हेतु भूत हैं, उसी प्रकार रस की उत्पत्ति में भी विभाव आदि कारण हैं। लोल्लट के इस सिद्धान्त पर मीमांसा का स्पष्ट प्रभाव है। उनके अनुसार रस नट या सामाजिकों के हृदय में उत्पन्न नहीं होता–राग, सीता, दुष्यन्त आदि पात्र ही मूलतः उसका अनुभव करते हैं। भ्रान्तिवश सामाजिक नट पर राम आदि का आरोप कर लेते हैं जिससे उन्हें भी क्षणिक आह्लाद–रामादिगत रस की प्रतीति हो जाता है। सामाजिकों के हृदय में रस की मूल स्थिति न मानना तथा रस के साभ विभाव आदि का कार्यकारण सम्बन्ध बताना लोल्लट के रस सिद्धान्त की प्रधान सीमाएँ हैं।

भट्टलोल्लट के बाद शंकुक आते हैं जिनका रस सम्बन्धी मत अनुमितिवाद के नाम से जाना जाता है। ये नैयायिक थे, अतः इनके सिद्धान्त पर भी न्याय–दर्शन की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है। इनके अनुसार विभाव आदि रस की अनुमित कराते हैं–जैसे–पर्वत पर धुआँ देखकर पर्वत स्थित अग्नि की अनुमिति होती है, वैसे ही नट में राम आदि के से अनुभव आदि को प्रत्यक्ष करके हम वहाँ रस का अनुमान कर लेते हैं। अतः शंकुक की दृष्टि में विभाव आदि एवं रस में उत्पाद–उत्पादक भाव न होकर अनुमाप्य–अनुमापक भाव है। इस सिद्धान्त के सूक्ष्म परीक्षण से यही निष्कर्ष निकलता है कि शंकुक भी रस की वास्तविक स्थिति अनुकार्य राम आदि पात्रों में ही मानते है, हाँ सामाजिकों के हृदय में उसका सर्वथा अभाव नहीं दिखाते।

रस–सूत्र के तीसरे व्याख्याकार आचार्य भट्टनायक हैं जिनका सिद्धान्त मुक्तिवाद के नाम से प्राख्यात हैं। इनके अनुसार विभावादि रस के भोजक तत्व है, रस भोज्य है। वे अपने मत के पुष्टि हेतु काव्य के दो नये व्यापारों की उद्भावना किए हैं–भावकत्व और भोजकत्व। अभिधा द्वारा काव्य में शब्दार्थ का बोध होता है, आवकत्व द्वारा सहृदय–हृदय के व्यक्तिगत राद्वेषजन्य अज्ञान की निवृत्ति हो जाती है–उसमें 'स्व' एवं 'पर' का भाव नष्ट हो जाता है तथा विभाव आदि का साधारणीकरण हो जाता है। भट्टनायक रस को भोग्य या आस्वाद्य मानते है, आस्वाद रूप नहीं। इन्होंने साधारजीकरण के रूप में एक नवीन काव्यमूल्य का उद्घाटन किया है। इनका मत सांख्या दर्शन से प्रभावित है।

अभिनव गुप्त के भट्टनायक के रस सिद्धान्त को ही आधार बनाकर व्यक्तिवाद की स्थापना की। अभिनव गुप्त के व्यक्तिवाद के रूप में रस–सिद्धान्त अपने चरम उत्कर्ष को प्राप्त हो गया। अभिनवगुप्त रस को ध्वनि का ही एक प्रमुख भेद मानकर रस को योग्य मानते हैं तथा उसे या लक्षण के द्वारा प्रतीत मानकर व्यंजनावृत्ति के द्वारा अभिव्यक्त सिद्ध करते हैं। इस प्रकार उनकी दृष्टि में विभाव आदि रस के अभिव्यंजक हैं और रस अभिव्यंग्य है। उनके मत पर शैवाद्वैत का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।[7] उन्होंने रस को ब्रह्मस्वादसहोकर कहा है तथा उसे सहृदय हृदय सवेध्य बताया है। डॉ. नागेन्द्र के शब्दों में अभिनव के रस विवेचन की एक प्रमुख सिद्धि है समष्टिगत रस की

प्रकल्पना। अभिनव का दर्शन मूलतः व्यक्तिवादी है, किन्तु उन्होंने रस–चक्र की पूर्णता अन्ततः सामूहिक रस–चेतना में ही सिद्ध की है। जिस सामाजिक कलानुभूति की स्थापना आधुनिक युग में साम्यवाद अथवा समाजवाद के प्रभाव द्वारा हुई है, अभिनव ने अपने ढंग से उसका अपूर्व व्याख्यान किया है।[8]

रस की समर्थ निष्पत्ति तभी संम्भव है जब लेखक के पास न केवल गहन अनुभूतियाँ हों, वरन् उन्हें बागी प्रदान करने की सामर्थ्य एवं कला भी हो। कवि के पास जब तक अपनी अनुभूतियाँ नहीं होगी, जब तक वह स्वयं ही अपनी अस्मिता का आस्वादन नहीं कर पायेगा और जब तक वह अपने गहन भावों को सहृदय–हृदय तक सम्प्रेषित करने की कला से अभिज्ञ नहीं होगा, तब तक उसके काव्य का रसास्वादन हो ही नहीं सकता।[9] काव्यगत रस वस्तुतः अपने मूल रूप में कवि के हृदयगत रस का ही प्रक्षेप होता है–नीरस हृदय से सरस वाणी के उद्रेक असम्भव है। रस वास्तव में अनुभूति की तन्मयता का ही वाचक है–कोई कवि जितना ही–'स्वकीय' अनुभूतियों की गहनता में उतरा होगा, अपने सहृदय पाठकों या सामाजिकों के मन में वह उतना ही रस भावों की उद्दीरित करा सकेगा। हो यह बात अलग है कि केवल अनुभूतियाँ ही पर्याप्त नहीं है, उकनी अभिव्यक्ति एवं सम्प्रेण का माध्यम भी उतना ही हृदयग्राही एवं सशक्त होना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. नाट्यशास्त्र, पृ. 71
2. वही, 5:15, 17
3. भाव इति कस्मादुच्यते। विभावो विज्ञानार्थः। विभाव कारण निमित्त हेतुरिति पर्यायाः। विभाव्यतेऽनेन वागंसत्वाभिनया इति विभावः। यथा विभावितं विज्ञातमित्यर्थान्तरम् नाट्यशास्त्र, पृ. 80
4. एवं यस्याश्चित्तवृत्तेर्यो विषयः स तस्या आलम्बनम्। निमित्तानि चोद्दीपकानीति बोध्यम्–दशरूपक, पृ. 33
5. अनुभावो निकारस्तु भावससूचनात्मकःदशरूपक 4:3
6. व्यभिचारिण इति कस्मादुच्यन्ते? विअभि इत्येतावुपसर्गौ। चर गतौ धातु। धात्वर्थवांगसत्त्वोपेतान् विविधमभिमुखेन रसेषु चरन्तीति व्यभिचारिणः। नाट्यशास्त्र, पृ. 84
7. स्व.शा., पृ. 115
8. रस–सिद्धान्त, पृ. 175
9. वागंगमुखरागैश्च सत्त्वेनाभिनमेन च। कवेरन्तर्गतं भावं भावयन् भाव उच्यते।